

## प्राप्ति रथाना

- १-श्री अ. मा. साधुमार्गी जैन संस्कृति-रक्षक संघ  
सैलाना मध्य-प्रदेश
- २- " एकुन ब्रिल्डिंग, पहली घोडी-तलान लेन  
बम्बई २
- ३- " सराफा बाजार जोधपुर राजस्थान

मूल्य १-००

प्रथमावृत्ति

२०००

वीर संवत् २५०६

विक्रम संवत् २०३७

चैत्र शु. १

१७-३-८०

---

मुद्रक—श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस सैलाना (म. प्र.)

---



द्विचरणम होने पर आपने 'सूर्य-प्रातिपद' का उल्लेख किया और यह भी है, इसी बीच इस पुस्तक की रचना हुई।

सामान्य भाषक धर्म का भाष्य तो करते ही जो-किसी भी चीजों का ध्वनि बिना किसी बाधा के कर सकता है, जान ही पाये, मन्त्रादिमात्र ही हो या निर्धन, व्यापारी हो, या जो-भी करने वाला मानव। जिसका धर्म का संभावक हो, सुगुणपूर्वक कर सकता है, आदिमें धर्म। यह ये पदों धर्म में खदा—आस्था होना आवश्यक है। यह आस्था होने पर आपने के नियम यथाशक्ति पालन करने और अधिक पालन करने की भावना रखने से प्रगति होती रहती है।

सम्पन्नदर्शन वर्ष ३० मन् १९७९ के प्रारंभ में यह पुस्तक लेखनार्थ के रूप में दिसेंबर ५० तक प्रकाशित होनी रहती। इसकी उपयोगिता देखकर धर्मप्राण उदारमना श्रीमान् मेठ मिलापचन्द्रजी मा. बीठरा मंड्या निवासी ने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का अनुरोध किया और एक हजार पुस्तकें स्वयं लेने की भावना बतलाई। फलस्वरूप 'साम्प्रदायिक धर्म' पुस्तक प्रकाशित की गई। आशा है यह पुस्तक समाज के लिये उत्तीव्र उपयोगी होगी।

सैलाना

चैत्र सु. १ सं. २०३७

१७-३-५०

—रतनलाल टोशी



# सामण्य सङ्घ-धम्मो

( सामान्य श्रावक धर्म )

संगलापरण—

( गुरुद्वय )

मत्तवत्तुं जिणवेदिहं, जिहोसं गुरु-अणियं ।

विश्य-उत्तुण्ण-वत्तुं वेदे, धरणासाह-सुहंणरं ॥१॥

—सामान्य श्रावकों के अधिक, वेदों के द्वारा सुदित, विश्य-उत्तुण्ण के इत्यादि, धरणासाह सुभ के कर्मों को ही और मत्त-वत्तुण्ण केवलके लिये विश्य-वेदोंके ही कर्मके-कारण हैं ।

विश्यण—'विश्येण' पर से (१) धरणासाहण करिणम, 'सुहंणरिण' पर से (२) सुभलियण, 'उत्तुण्ण' पर से (३) उत्तुण्ण-उत्तुण्ण और 'मत्तवत्तुण्ण' पर से (४) मत्तवत्तुण्ण को लिये विद्यमान है ।

सङ्घिणा गुरु-आणं व, धोणासि गुरुद्वय-मायसं ।

सामण्य-सङ्घि-धम्मो जं, कुत्तोली धम्मं वरं ॥२॥

—सङ्घिणा गुरु-आणं व, धोणासि गुरुद्वय के कारणों से सामान्य धम्म के, सामान्य धम्म को धरणा करके धरि, सामान्य धरणा के धम्म को गुरुद्वय है, जिहोसं धरणासाहण करके गुरु-उत्तुण्ण केवलके लिये धरणा करके धरणा करण है ।

## सामान्य श्रावक की परिभाषा

जिणघम्माणुरागी वा, जाओ कुलंमि तंसि वा ।

सत्त-वसण-चाई वा, सो हि सामण-सावगो ॥३॥

—जो जिनघर्म का अनुरागी हो अथवा जो जिनधर्म के अनुरागी कुल में जन्मा हो अथवा जो मत्त-व्यगनों में राभी या कई व्यगनों का त्यागी हो, वह सामान्य श्रावक है ।

टिप्पण—इस भाषा में श्रावक की परिभाषा के तीन विवरण दत्ताये हैं—

१ साधु-सन्त, श्रावक आदि के मार्ग से जो जिनघर्म का अनुरागी बना हो, जिसकी चर्चा किंचित् मूढ़ हुई हो और जो नमोपकार मंत्र का स्मरण करता हो, वह सामान्य श्रावक है ।

२ जो जिनघर्म के अनुयायी कुल में जन्म लेने के कारण मद्य-मांस का त्यागी है और साधुओं की उपासना करता है, वह सामान्य श्रावक है ।

३ जिसने साधु आदि के उपदेश को सुन कर, सातों कुव्यसनों (शिकार, द्यूत, मद्य, मांस, परस्त्री-गमन, वेश्या-गमन और चोरी) का कई कुव्यसनों का त्याग कर दिया है और जिनघर्म पर श्रद्धा रखता है, वह सामान्य श्रावक है ।

## सामान्य श्रावक के करणीय नियम

(काव्य)

मिच्छत्त-चाओ जिणघम्म-इच्छा, देवत्युई वंदणयं गुरुस्स  
मणोरहा घम्मवदाण-सुद्धं, पहावणा संघ-सुहायरो य ।४।

(अनुष्टुप्)

साहम्मियस्स उद्धारो, काउस्सगो सुयस्सई ।

णमुक्कार-सहियं च, दिवस-चरिमं सया ।५।



विद्यमान-द्वय भाग में विद्यमान परिमाण के लिये निर्णय निर्णय है-  
 १ तन्त्रों में अतिरिक्त २ तन्त्रों में अत्यन्त रूप प्रतीति । ३ अन्तर्गत  
 में अन्तर्गत और ४ अन्तर्गत में तन्त्र रूप प्रतीति ।

दूसरी रीति में द्वय भाग में विद्यमान के तीन रूप प्रमाण है-१ अत्यन्त  
 रूप प्रमाण के अन्तर्गत में तन्त्र का अतिरिक्त, २ अत्यन्त होने पर भी तन्त्र के  
 निर्णय के अन्तर्गत में अत्यन्त के अतिरिक्त अन्तर्गत और ३ अन्तर्गत के द्वारा तन्त्र-  
 निर्णय के नाम पर विपरीत-प्रतीति । अन्तर्गत तन्त्र का अतिरिक्त, अन्तर्गत-  
 प्रतीति और विपरीत निर्णय विद्यमान है ।

## मिथ्यात्व के भेद

(काव्य)

दुःखस्स पुण्णे भव-वारि-मज्जे,  
 जेणं णिवुद्धा सघयं हि जीवा ।

सो सज्जओ साहणओ य मिस्सो,  
 मिच्छत्तभावो तिविहो पउत्तो ॥९॥

जिससे दुःख रूपी जल से परिपूर्ण भव-सागर में जीव सदा  
 से डूबे हुए हैं, वह मिथ्यात्व भाव साध्य, साधन और तदुभय  
 माध्यम से तीन प्रकार से प्रवृत्त होता है । अर्थात् मिथ्यात्व  
 के तीन भेद हैं-साध्यगत, साधनगत और तदुभयगत ।

टिप्पण-पद्य की सार बातें-१ संसार दुःख रूप है और दुःखानुभव  
 का प्रधान हेतु मिथ्यात्व है । २ भव-परम्परा का कारण मिथ्यात्व है ।  
 ३ साध्य आदि को नहीं समझना मिथ्यात्व है ।

साधारणतः मिथ्यात्व

स्वप्नवत्तु अस्वप्न-विमान-सूक्ष्मा,  
 जगन्नाशया विरक्तय-विनाया तदा ।  
 कुञ्जिप्यथो विरक्तयामा यद्वैद्व म्पौ,  
 विरक्तयामं तस्यमयं यद्वैद्व ॥३॥

स्वप्न के विषय में स्वप्न-विमान-सूक्ष्मा, अस्वप्नवत्तु, अस्वप्न-विनाया, कुञ्जिप्यथो और यद्वैद्व म्पौ, यद्वैद्व-मयं विरक्तयामं अस्वप्नवत्तु के अर्थ हैं ।

स्वप्न-विमान-सूक्ष्मा अस्वप्न-विनाया अस्वप्न-विनाया के अर्थ हैं। इन विरक्तय के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं ।

१ स्वप्न-विमान-सूक्ष्मा—स्वप्न-विमान-सूक्ष्मा के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं ।

२ अस्वप्न-विनाया—अस्वप्न-विनाया के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं ।

३ कुञ्जिप्यथो—कुञ्जिप्यथो के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं ।

४ यद्वैद्व म्पौ—यद्वैद्व म्पौ के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं ।

५ यद्वैद्व मयं—यद्वैद्व मयं के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं। इन अर्थ के अर्थ हैं ।



## साधनगत मिथ्यात्व

(पन्ना ७)

उत्तमगतं परमगतं, साहजं कृत्विहं मयं ।

उत्तमगतं तु सव्यभावा, येनो मूलं तं मेपरं ॥११॥

—साधन की प्रकृति के माने मय है आसमा तिर परगत । अपने उत्तम भाव (सम्यग्दर्शन आदि) आसमा साधन हैं और येन मूल और धर्म परगत साधन है ।

टिप्पण—आत्मा ही सिद्धि में परिणत होता है । दुर्भावों कारण में गुणों का आविर्भाव आरम्भगत कारण है और गुणों के आविर्भाव में सहायक अरिहस्त येन आवि परगत साधन है । इन्हें कमजोर उपादान और निमित्त कारण कहा जा सकता है । भाषा में 'न' शब्द के द्वारा धर्म को भी ग्रहण कर लिया गया है ।

भावबुद्धी ण सदभावे, दुर्भावे खलु सा भवे ।

ऊणा य अद्विरिक्ता उ, साहणत्तेऽतहा मई ॥१२॥

उत्तम भावों = सम्यग्दर्शन, क्षमा, अहिंसा आदि में सदभाव बुद्धि न हो—दुर्भाव बुद्धि हो, दुर्भाव मिथ्यात्व, क्रोध, हिंसा आदि में सद्भाव बुद्धि हो और उनकी साधनता—असाधनता में जिनोक्त भावों से कम या ज्यादा बुद्धि हो, तो वह साधनगत मिथ्यात्व है । अर्थात् साधनगत मिथ्यात्व के १ साधन-विपर्यय, २ न्यून-साधन-प्रतीति और ३ अधिक साधन प्रतीति-ये तीन रूप हैं ।

तत्तभमं तु मिच्छत्तं परगयं तिभेयगं ।

लोउत्तरिय-लोइय-कुप्पावयणियं चए ॥१३॥

ये मन्त्र आत्मन् ! देवसि मन्त्र के प्रथमम्, सोमो-  
 पतिम्, सोमिन् और सुप्रसन्नमिन् मन्त्र तीन मंत्र माने उत्तम  
 विभागात् को मंत्र ।

विभाग-इस भाग में निम्नलिखित, अष्टादशी विभागों के तीन  
 मंत्र समझाये गये हैं । प्रथम मंत्र के भी सोम-सोम मंत्र होते हैं । सोमोपति  
 देवसि मन्त्रम्, सोमिन् मन्त्र और सुप्रसन्नमन्त्र मन्त्र के विभाग में सोमिन्  
 की सोमोपति विभागात् कहते हैं । सोमो मन्त्रम् अतिशय के अत्यन्त हीन  
 माने होते हैं। वे भी 'सोमिन्सोमो मन्त्रा इति' 'सोमोपतिवती सप्तमो मुने'  
 मन्त्र । सुप्रसन्न मन्त्र की सोमिन् की ही सोममन्त्रों होते हैं । विष्णु प्रथम  
 सप्तमम् मन्त्रि में सोम की अत्यन्त अत्यन्त मन्त्रि । मन्त्र की अत्यन्त  
 अतिशय अत्यन्त मन्त्रों की अत्यन्त ही होते हैं। वे भी 'सोमो मन्त्र  
 मन्त्रि है, इत्ये मन्त्र मन्त्र मन्त्र है' इत मन्त्र के अत्यन्त मन्त्रि है, इत्ये  
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र है' मन्त्र अत्यन्त मन्त्र-मन्त्र मन्त्र के अत्यन्त की  
 अत्यन्त मन्त्रि सोमोपति विभागात् है । इती मन्त्र सोमिन् और सुप्रस-  
 न्निन् देवसि को अत्यन्त-इत्ये अत्यन्त सोमिन् और सुप्रसन्नमिन्  
 विभागात् है ।

### उत्तमगणत विभागात्

(मन्त्र)

सोमो हि मन्त्रो मन्त्र-सोमोपतिम्,  
 सुप्रसन्नो मन्त्र-सुप्रसन्नमन्त्रम् ।  
 सोमिन् मन्त्रो सुप्रसन्नो मन्त्र-  
 सुप्रसन्नो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रो मन्त्रम्

सोमो हि मन्त्रो मन्त्र-सोमोपतिम् (मन्त्र) मन्त्र  
 सुप्रसन्नो मन्त्रो सुप्रसन्नमन्त्रम् (मन्त्र) मन्त्र मन्त्र के अत्यन्त

(दुर्भाग-दुर्भाग भीम दुर्धर) शून्य भाग नहीं माने जायेगा, उस प्रकार जो सिद्धांत है उसका उदाहरण दिया है। वह उदाहरण सिद्धांत है।

टिप्पण-इस पद्य में मिथ्यात्वका के लिये रूप बताने का है-  
१ मूलाओं में सांसारिक भाव, २ मूला अन्तर्गामी में सांसारिक भाव,  
३ दुर्भागों में शून्य भाव और ४ अमूर्त अन्तर्गामी में शून्य भाव। प्रत्येक  
के भावना (इच्छा) और आशयना रूप दोनों जोड़ लीये हैं।

### मिथ्यात्व का त्याग

संपञ्जलीहि विषाण जूतो,

समुद्धिओ णं गुरुपाय-मूले ।

मिच्छतभावस्स करेज्ज चायं,

संतो कयणो य तित्तो गमुद्धो ॥१५॥

शांत कृतज्ञ और नीनों योगों में शुद्ध बन कर, विधि  
सहित हाथ जोड़ कर और गुरुदेव के चरणों में खड़ा रह कर  
मिथ्यात्व भाव का त्याग करें।

टिप्पण-इस पद्य में मिथ्यात्व के त्याग की प्रतिज्ञा लेने की विधि  
बतलाई गई है। यथा-१ अहंकार का त्याग करके गुरुदेव के समीप जान  
२ दोनों हाथ जोड़ना और उन्हें मस्तक में लगाना, ३ मस्तक झुकाना,  
४ मनःशुद्धि-गुरुदेव और प्रतिज्ञा के प्रति यद्गमान रक्षण, ५ कायशुद्धि-  
अन्य क्रियाओं को छोड़ कर संचालन झुका कर घंबना करना, फिर ६ विधि  
सहित गुरुदेव के चरण कमलों में खड़े रहना, ७ वचनशुद्धि-गुरुदेव से  
प्रतिज्ञा की याचना करना, ८ मिथ्यात्व का त्याग करना अर्थात् प्रतिज्ञा  
के वचनों का उच्चारण करना, ९ प्रतिज्ञा के बाद गुरुदेव के प्रति कृत

ज्या प्रकृत करने हुए संसिद्धि (सो ह्याय हो पुराने और भावक) हुआ कर  
 कसकस कराना और १० सोन होना संसिद्धि हुआ लग विपर यह कर  
 कसिता-वाक्य हो भावना कराना और इस संसिद्धि से संसिद्धि को जो  
 विनाम संसिद्धिवाक्य ही, से पढ़ना कराना ( यह संसिद्धि पढ़ना ही संसिद्धि है ।

### निध्यालय के ल्यांग का काम

(अध्याय)

माने म-लयालयीति कर, संसिद्धि संसिद्धि करे ।

मुत्तमादाह्याय-वाक्य, संसिद्धि संसिद्धि करे ॥१६॥

—निध्यालय संसिद्धि के विनाम से संसिद्धिवाक्य करे । फिर  
 संसिद्धिवाक्य से संसिद्धि संसिद्धि करे । संसिद्धि संसिद्धि करे ।  
 संसिद्धि संसिद्धि को संसिद्धिवाक्य से संसिद्धि करे और संसिद्धि संसिद्धि  
 करे । इससे बाद संसिद्धिवाक्य संसिद्धि संसिद्धि से संसिद्धि का  
 संसिद्धि करे ।

निध्यालय संसिद्धिवाक्य संसिद्धि से संसिद्धिवाक्य संसिद्धि से संसिद्धि  
 संसिद्धि संसिद्धि से संसिद्धि संसिद्धि करे ।

### अध्याय का संसिद्धि

(अध्याय)

निध्यालय-संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धिवाक्य

संसिद्धि-संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि वा ।

संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धिवाक्य,

संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धिवाक्य ॥१७॥

निध्यालय से संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि से संसिद्धि  
 संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि संसिद्धि

वार-वार शर्तों का धारण करे और जन्म को कर्तार्य और सफल माने।

विषय-द्वय पत्र में मिथ्यात्व के त्याग में अपमानता के विषये करणीय कृत्य लिखा है मन्त्रार्थ में है। गया-१ मनुष्यों के अध्यायन में मिथ्यात्व के त्याग होने वाली गोप-परम्परा की और मिथ्यात्व के बुरे कर्मों की जानकारी करना, २ बार-बार उनका निन्तान करना, ३ मिथ्यात्व-त्याग के संकल्प को दूषित करने वाले अतिनारों का पुनः-पुनः निन्तान करते हुए उनसे मन्त्रना, ४ संकल्प-शुद्धि की भावना करना, ५ मंत्रों में मिथ्यात्व का त्याग कर लिया है'-यह सोच कर प्रसन्न होना और ६ बार-बार हृदय को धारण करना तथा ७ 'मिथ्यात्व का त्याग कर लेने के कारण मेरा जन्म कृतार्थ हो गया-सफल हो गया'-यह बार-बार सोचते रहना।

### द्वितीय बोल

(जिनघर्म-प्रीति)

### किसका शरण है ?

(अनुष्टुप्)

विविहा धम्मऽहिप्पाया, विरुद्धा वि परोप्परा ।

णियम्मि वि विरुद्धा ते, कस्स मे सरणं जगे ॥१८॥

(मुमुक्षु जीव पुकार करता है-) जगत् में धर्म के विषय में भाँति-भाँति के अभिप्राय हैं। वे परस्पर विरुद्ध भी हैं अरे ! वे अपने-आपमें भी विरुद्ध हैं। ऐसी स्थिति में मुझे किसका शरण है ?

धन्य है वह

जिणिद-धम्मो हि जगे अवीओ,

सच्चेव सच्चो स हि मोक्खमग्गो ।



### श्रद्धा के हेतु

वस्तु अणंता नि ण तो निवाया,  
 दोसा फसाया ण हि किंनि तेनु ।  
 वाया तउत्ते सरिया व जंति,  
 कम्हा ण सद्धं पकरेज्जिगरस ॥२१॥

(मुमुक्षु को गमाधान प्राप्त होता है—) इम निर्ग्रन्थ-प्रवचन के अनन्त बलता होने पर भी इममें परस्पर किमी प्रकार का विरोध नहीं आता है। क्योंकि उन वस्तुओं में हिंसादि दोष और कषाय रूपी कानिमा किंनिन् मात्र भी नहीं है और उन महापुरुषों के प्रवचन रूपी गागर में कभी बाद नदियों के गमान मिन जाते हैं। फिर किस कारण से इम निर्ग्रन्थ-प्रवचन की श्रद्धा नहीं करते ही ?

### अपनी भी बुद्धि है

अम्हे हु सच्चत्ति कहेन्ति सच्चे,  
 सच्चं परं कि ण ममाण बुद्धी ।  
 वरं कहेत्तस्स सअस्स चत्थुं,  
 कोणिज्ज को तं वय पुइगंधं ॥२२॥

‘हम ही सच्चे हैं’—सभी यही कहते हैं—यह सत्य है। किन्तु हमारी बुद्धि नहीं है क्या ? अपनी वस्तु को अच्छी बतलाने वाले की उस सड़ी हुई और दुर्गन्ध से युक्त वस्तु को, कहो, कौन खरीदेगा ?

आत्मा ही सगरीब है

परं परोक्षता निवारणे नि सख्यं,

परं न त्वं सख्यमि अ-सख्यमानं ।

साधुना भाषाह पयः सुखं वा,

परोक्षतः सखा सखी नि सखी मनुजः॥

कहा है कि तुम सखी बनो तो सखी ही बनो है और  
अपना है कि तुम असाधु से तुम सखी की सखी बनने  
ही । असाधु सखी कि सखी में विषय है। सखी असाधु से  
परं परं सखी सखी ही है । असाधु सखी ही तुम सख्य-  
सखी ही न सखी सखी ही सखी ही सखी ही है ।

विषय-विषय सख्यता का अर्थ है कि सखी ही सखी ही सखी  
ही सखी ही है । सख्यता ही सखी सखी ही सखी ही है ।  
सखी सखी ही ही ही सखी ही ही ही सखी ही सखी ही  
सख्यता ही सख्यता ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही  
सखी ही है । १ । सख्यता ही सखी ही सखी ही (सखी) सखी  
ही ही है । सखी ही सखी ही सखी ही ही सखी ही सखी ही  
सखी ही है ।

१ । ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही  
सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही  
सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही

सख्यता ही सखी ही सखी ही

सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही

सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही सखी ही



भक्ति गडे तन्मि ह्नु पञ्चयं न,  
तिष्यं करेज्जा फिर एस कज्जो ॥२४॥

—निश्चय ही जिगती सेवा भक्त-सुख को मिथाने वाली है, सुरक्षा करने वाली है और पाप सभी योग को हरने वाली है, उसी निर्वाण-प्रवचन में ही तीव्र रूप से भक्ति (श्रद्धा) मनि और प्रतीति करो और निश्चय ही यही करना योग्य है ।

टिप्पण—अहेतुगम्य भावों की श्रद्धा, सर्वज्ञोक्त कियानुष्ठान की दक्षि और सर्व-साध्य भावों की प्रतीति करना योग्य है ।

### श्रद्धा-पोषिका भावना का अभ्यास (अनुष्टुप्)

सव्वाणुद्वाण-मूलं हु, इमं कुज्जा सुभावणं ।  
'सच्चं तमेव नोसंकं, जं जिणोहि पवेइयं' ॥२५॥

सभी धर्म-अनुष्ठानों की मूल रूप निम्नलिखित इस उत्तम भावना का सदा अभ्यास करो—'वही सत्य है—शंका से रहित है, जो राग-द्वेष से रहित आत्माओं ने कहा है ।'

### धर्म-प्रीति सदा रहे (आर्षि)

जिणणाह-धम्म-पीई, समत्त-सुह-इड्ढि-दाइणी सुद्धा ।  
वासं करेज्ज णिच्चं, माणस-कमलंमि लच्छिव्व ॥२६॥

(मुमुक्षु आत्मा भावना करता है—उपर्युक्त भावना के अभ्यास आदि से) हृदय-कमल में, लक्ष्मी के समान समस्त सुख और ऋद्धि को प्रदान करने वाली जिनेन्द्र देव के धर्म की

एक शीत शरीर बना करे ।

विजय-सुख-सुखा-विषयं, तप-गत-सौख्य-सौख्यं तस्मिन् ।

शाक्यसि विजय-रत्ना, सपत्न्या सपत्न्या सपत्न्या मे ॥२७॥

(सुशोभ) मनुष्यात् (विशेष) देवों के साथ वर्जित धर्म में शीत सुख-सुख शरीर यदि ही ही बना है । जहाँ विजय ही ही विजय एक एक शरीर के ही ही है, वे मनुष्य का-का-का-का के साथ है ।

सुशोभ शीत

(श्रीकृष्ण)

(सर्वज्ञ)

विजय-सुख-सुखा-विषयं, सपत्न्या-सपत्न्या-सपत्न्या,

शक्य-स-सपत्न्या वा, सपत्न्या ही सपत्न्या ।

शक्य-वि-जय-रत्ना, सपत्न्या-सपत्न्या-सपत्न्या,

तु ह्यहं सुख-सुखा-विषयं, सपत्न्या-सपत्न्या-सपत्न्या ॥२७॥

श्री कृष्ण (विशेष) देवों के साथ वर्जित धर्म में शीत सुख-सुख शरीर यदि ही ही बना है । जहाँ विजय ही ही विजय एक एक शरीर के ही ही है, वे मनुष्य का-का-का-का के साथ है ।

(सुशोभ)

विजय-सुख-सुखा-विषयं, सपत्न्या-सपत्न्या-सपत्न्या,

शक्य-स-सपत्न्या वा, सपत्न्या ही सपत्न्या ।

त्रिकाल-संज्ञा-सरणिज्जओ तं,  
पच्चूस-कालंमि द्वारे अवरसं ॥३१॥

देवों के पूजा, तीन लोक के नाम अर्थात् भगवान् निम्नतम ही आराध्य देव हैं। देवीनों मन्त्राओं में स्मरण करने योग्य हैं। प्रभात काल में उनका स्मरण अवश्य करना चाहिये।

(अनुष्टुप्)

स-हिअयंमि कुब्जेज्जा, जिण-णाहस्स अरुत्तणं  
पइदिणं हि तिवसुत्तो, असवके चेअ वा सइं ॥३०॥

अपने हृदय में जिननाथ की अर्चना प्रतिदिन तीन बार करे। यदि यह अशक्य हो तो एक बार अवश्य करे अर्थात् जिनन्द्र देव का स्मरण त्रिकाल न हो सके तो एक बार तो करना ही चाहिये।

### स्तव और पूजा

दब्ब-भावाण भेएण, आहिओ दुविहो थवो ।

होइ पूया वि सो चैव, सहरिसो करेज्ज तं ॥३१॥

—द्रव्य और भाव के भेद से स्तव दो प्रकार का कहा गया है और वही पूजा है। इसलिये सहर्ष स्तव (पूजा) करना चाहिये।

टिप्पण—द्रव्य-स्तव और भाव-स्तव—इन प्रत्येक के दो-दो अर्थ होते हैं। द्रव्यस्तव—आराध्य के द्रव्य = शरीर, अतिशय, यश आदि की प्रशंसा या आराध्य की द्रव्य = वचन आदि के द्वारा स्तुति। भावस्तव—आराध्य के भाव = ज्ञानादि गुणों की स्तुति या आराध्य की भाव के द्वारा स्तुति। यहाँ दूसरा अर्थ ग्राह्य है।



जानादि का शोषणात्तु अग्रे वर्णित किया भी अथवा अथवा अथवा (नमोऽयुगं के पाठ) से या अथवा अथवा, दिशि आदि भाषाओं के स्तोत्र-स्तुतियों में परिशिष्ट दिशि अथवा अथवा या सूर्यादय में पहले जिनपूजा करें।

### नियत-विधान

अहवुग्मयसूरमि, कुज्जा सिद्धाण-संशयं ।

सूरत्थमण कालमि, तित्थेस-सुद्ध-मंगलं ॥३५॥

अथवा सूर्यादय के समय सिद्ध भगवन्तों की स्तुति करें और सूर्यास्त के समय शीघ्रीय तीर्थकर भगवन्तों का स्तुति-मंगल करें। (दृष्टव्य—प्रातःकाल में 'नमोऽयुगं' का पाठ और सायंकाल में 'लोगस' का पाठ स्मरण करें।

### चतुर्थ बोल

(गुरु-वंदना)

### गुरु का महान् उपकार

(काव्य)

महोवयारो हि सम्मत्त-दाइणो,

जिणिद-धम्ममि सवकज्ज-कारिणो ।

अणं महं तत्स अम्हाण सीसए,

नमिज्ज तं देवयं चेइयं गुरुं ॥३६॥

हमें सम्यक्त्व प्रदान करने वाले और जिनेन्द्र देव द्वारा उपदिष्ट धर्म में उत्तम धर्म-क्रियाएँ—व्रतादि करवाने वाले गुरु का हम पर महान् उपकार है। उनका हमारे

विश्व धर्म के लिये प्रकाश है । अतः हमें इस देव-संस्थान और सर्वज्ञान-संस्थान के लिये हमें आनन्द प्राप्त कर लेना चाहिये ।

**पञ्चा-संवेग-संज्ञना**

(अनुच्छेद)

विद्यमानानि स-सौमित्रिण, सुमंति यजमिदम स ।

सौम्य ज्ञान-संवेगिन, संवेगिन स वैपद्य ॥३७॥

यह वेद के अन्तर्गत अथर्व वेदिका-संस्थान होने पर सौम्य अथर्व-संस्था और संवेगिन के लिये भी यजमान के लिये प्रकाश है ।

विद्यमान-संवेगिन के अर्थ-संवेगिन-संवेगिन, अथर्व-संवेगिन-संवेगिन के लिये प्रकाश है । अतः हमें इस देव-संस्थान और सर्वज्ञान-संस्थान के लिये हमें आनन्द प्राप्त कर लेना चाहिये । अतः हमें इस देव-संस्थान और सर्वज्ञान-संस्थान के लिये हमें आनन्द प्राप्त कर लेना चाहिये । अतः हमें इस देव-संस्थान और सर्वज्ञान-संस्थान के लिये हमें आनन्द प्राप्त कर लेना चाहिये ।

**सौम्य-संवेग-संज्ञना**

सौम्यसि होयल-संवेगिन, विद्यमाने वा सुमंति ।

अथर्व स संवेगिन, अथर्व-संवेग-संवेगिन ॥३८॥

यह वेद के अन्तर्गत अथर्व वेदिका-संस्थान होने पर सौम्य अथर्व-संस्था और संवेगिन के लिये भी यजमान के लिये प्रकाश है । अतः हमें इस देव-संस्थान और सर्वज्ञान-संस्थान के लिये हमें आनन्द प्राप्त कर लेना चाहिये ।

**सुमंति-संवेग-संज्ञना**

अथर्व सुमंति संवेगिन, अथर्व-संवेग-संवेगिन ॥३९॥

एवं विहित जाति तथा, संख्याए मुद्रया हि ॥३१॥  
 -जा मुद्रा रोगियों को लाभ, जो अति मूर्खों को लाभ  
 तथा पूर्णतः मरणा करे । इस प्रकार मुद्रा कला विधि का  
 अवशय समझना चाहिये ।

### ग्रामस्थित गृहती को वन्दना

साहू या साहूणीओ का, भूसौत स-पुरं जया ।

वंदिज्जा ते तयाज्वरसं, सार्द्धं सुव्याप्त सया ॥४०॥

कोई साधु या साध्वियों जब अपने पुर को शोभित कर  
 रही हों, तब उन गृहस्थियों को मन्दा जवत्क ने निराशं तबतक  
 प्रतिदिन एक बार भी वन्दना अवश्य करें । अर्थात् उनके दर्शन  
 करें ।

### पंचम बोल

(मनोरथ-चिन्तन)

(काव्य)

लौयंसि अस्सि तु अणंत-भावा,

तम्हा अणंता य मणोरहा वि ।

तत्तो विमोक्खाय करेज्ज सुद्धे,

तित्थेस-वुत्ते ति-मणोरहे हु ॥४१॥

इस लोक में अनन्त पदार्थ हैं । इस कारण जीव के  
 मनोरथों का भी कोई अन्त नहीं है । उन विकल्पों के जाल से  
 छूटने के लिये, भगवान् तीर्थंकर प्रभु के द्वारा कथित शुद्ध तीन  
 मनोरथों का अवश्य सेवन करो ।















अथर्ववेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

अथर्ववेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥  
यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥  
यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

अथर्ववेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

अथर्ववेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥  
यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

(अथर्व)

अथर्ववेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

अथर्ववेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

यस्य वेदो यो विद्वान्, तद्गुरुं विद्मः ॥ १ ॥

रचना है, उसे कदा कदा अथ जैसे ही सकता है ?

नितिरुम सहायत्वं, न मणंवि पमायम् ।

आराहण्याद् उज्ज्वलौ, संलेह्यं वरं करे ।६७।

इस प्रकार वास्तविक भाव का निवृत्त करके शेष मात्र भी प्रमाद न करे । अन्तिम आराधना में नक्षत्र होकर श्रेष्ठ संलेपना करे (अर्थात् अन्तिम आराधना की विषय भावना करे)

(काव्य)











एते तद्विषयं, अत्रि-मन्त्रं तदा :

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा, अत्रि-मन्त्रं तदा तदा

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा, अत्रि-मन्त्रं तदा तदा

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा, अत्रि-मन्त्रं तदा तदा

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा,

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा :

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा, अत्रि-मन्त्रं तदा तदा

अत्रि-मन्त्रं

(अत्रि-मन्त्रं तदा तदा)

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा

अत्रि-मन्त्रं तदा तदा















सम्यक् श्रुत तीर्थ का गूण है और गुण-समूह का प्रकाशक है । जो ऐसे सम्यक् श्रुत के ज्ञान और दान के द्वारा धर्म का प्रभाव बढ़ाता है, वह धन्य है ।

धम्मं सयं पभावेज्जा, वक्खलाण-पाढणेहि वा ।

पयारगे पढावित्ता, पेसित्ता जत्थ-तत्थहि ॥१०२॥

व्याख्यान और धर्म-शास्त्र के अध्यापन में स्वयं धर्म की प्रभावना करे और प्रचारकों को सैद्धान्तिक ज्ञान पढ़वा कर और जहाँ-तहाँ (देश-विदेश में) भेज कर, दूसरों में प्रभावना करवाये ।

### गुण-आदर से प्रभावना

आयरणं गुणार्णति, जिणवरस्स सासणं ।

सण-वय-कियाहि ता, सम्माणं गुणिणो करे ॥१०३॥

'गुणों का आदर करना अथवा गुणों का आचरण करना'— यह जिनेश्वर देव का शासन (उपदेश) है । इसलिये मन, वचन और क्रिया से गुणीजन का सम्मान करें ।

(फारुग्य)...

भवेइ कित्ती जिण-सासणस्स,

धम्ममे सुही होइ गुणी विसण्णो ।

संवोहिदीयं सुववेइ अप्पा,

गुणीण सम्माण-समायरेणं ॥१०४॥

गुणियों का सम्मान करने से जिनशासन की कीर्ति होती

है (द्वितीया काण्ड है या पुनः-अर्थात् के अन्त में) विद्याय पाठे  
द्वयं दृष्टी, अर्थं च प्रथमं द्वयं च द्वयं अर्थात् = पुनः का अन्त  
अर्थे अर्थात् अर्थे द्वयं-अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो

अर्थात्-अर्थात् अर्थे द्वयं  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थात् अर्थात् अर्थे द्वयं  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो

अर्थात् अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो

विद्याय चो अर्थात्

(अर्थे चो)

अर्थात् अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो

अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो

अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो

अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो

अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो  
अर्थे चो अर्थे चो अर्थे चो

मणेण उ णिमित्तेण, द्वाण-संकप्पएहि य ।

जा जरुस अत्थि ताए य, जए धम्म-पहावणं । १०७।

मन से होने वाला चमत्कार अष्टांग निमित्त, ध्यान और संकल्प से होता है । इस प्रकार जिसके पास जो भी चमत्कारी विद्या है, उससे वह धर्म की प्रभावना में यत्न करे ।

टिप्पण—ज्योतिष, सामूहिक भावि और आधुनिक अक्षरविद्या, अंकविद्या आदि निमित्त में, योग से प्राप्त विभूतियाँ, लब्धियाँ आदि ध्यान में और हिप्नाटिज्म, इन्द्रजाल आदि संकल्प में गणित हैं ।

ललिया उवभोगी य, कला वि विवहा पुणो ।

चित्त-लेहण-संगीय-सिप्पाइं पढमा कला ॥ १०८ ॥

कलाविद्या के भी ललित और उपयोगी—अनेक भेद हैं । चित्रकला, लेखनकला, संगीतकला, शिल्पकला आदि कई प्रकार की ललितकला है ।

टिप्पण—लिपि, काव्य, कथा, कहानी, उपन्यास आदि लेखनकला के अनेक भेद-प्रभेद हैं ।

वत्थु-विज्जय-माई य, बीयं जाणिज्ज वा कलं ।

जा उच्चिया उ ताहि च, कुज्जा धम्म-पहावणं । १०९ ।

वास्तुकला, वैद्यक (चिकित्सा) आदि दूसरी उपयोगी कला के कई भेद हैं । जो कलाएँ धर्मक्षेत्र के योग्य हों, उन-उन कलाओं से धर्म की प्रभावना करे ।

तपादि-प्रभावना

तवं वयं स-सत्तीए, दीहं करेइ सोहणं ।

धम्म-पमावणं गथं, वियरइ पयासइ ॥ ११० ॥









ओशाण्य-नायं न कये गमायनां,  
नत्तारणाशामाण्यं निगार्णिना ॥११॥

१ संघ की निरा नहीं करे, और यदि कोई निरा करना ही तो उमका निवारण करे । २ संघ में फूट नहीं फैलाए, यदि ही गई हो तो उसे दूर करे । ३ संघ का निरस्कार नहीं करे और ४ परस्पर क्षमापना करे—यह संघ की नार प्रकार की अनाशातना भक्ति है । इन्हें अच्छी तरह से जानकर करना चाहिये ।

### वैनयिका भक्ति

संघस्स कुज्जा अहिवायणं वा,  
धम्मस्स कज्जे मुहयं च दिज्जा ।  
सेवं करेज्जा गुण-फित्तणं च,  
चउच्चिहा वेणइया य भत्ती ॥१२०॥

१ चतुर्विध संघ का अभिवादन करे या उसे वंदना करे । २ धर्म के कार्य में संघ को प्रमुखता दे । ३ चतुर्विध संघ की सेवा करे और ४ संघ का गुण-कीर्तन करे । यह संघ की चतुर्विध वैनयिका भक्ति है ।

### विघ्नोपशामिका भक्ति

संघस्स विग्घाणि सओहरेज्जा,  
रक्खेज्ज सत्तं सयलं च सारं ।

सर्वेषु काव्येषु सर्वेषु कविषु,

सर्वेषु कृष्ण विष्णुश्यामिण्यसि ॥३८॥

१. सर्वेषु कृष्ण, श्याम, श्याम शीत कवयः सर्वेषु कविषु-सर्वेषु कविषु कृष्ण कवेः शीतः ३ शीतः कवेः कृष्ण शीत कवयः सर्वेषु कविषु सर्वेषु कविषु कवेः ३ कृष्ण शीत कवयः सर्वेषु कविषु-सर्वेषु कविषु कवेः ३ ।

सप्तम अध्याय

(सप्तमोऽध्यायः)

श्री कौटिल्ये विष्णु श्यामिण्यसि,

सर्वेषु कृष्ण विष्णुश्यामिण्यसि

सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि

सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि

सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि

सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि

सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि

सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि

सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि

सर्वेषु कृष्ण श्यामिण्यसि

मर भी उभेगा पुनः नहीं होता है । मरने-मरुणों को परलोक-मत्तवक होना चाहिए । पतों-कर्म-दोष-में मरुणों-में ही सिद्धि होती है ।

सानोरार्णो गृहिया हि जीवा,  
लोवेति धिञ्जं गृह्याम्निषो वि ।  
घंता गुणं ते विदुरा अभावा,  
अभावयं किं न करेद्द पायं ॥१२४॥

संगार में जीव पाप के उदय में निश्चय ही दुःखी है । दृढधर्म भी दुःख में अपना धर्म छो देते हैं । वे अभाव के कारण गुणों को छोड़ कर विह्वल हो जाते हैं । अभाव वाला व्यक्ति क्या-क्या पाप नहीं करता है ?

घण्णोऽसि पुण्णो जिणधम्मवं जो,  
दुयखी वि घण्णो गुणघं सधम्मे ।  
परिग्गहत्तं चद्दऊण वित्तं,  
वच्छल्लएणं सहलं करेसु ॥१२५॥

हे लक्ष्मीवल्लभ ! जो तुम भौतिक पदार्थों से पूर्ण हो गए भी जिनेश्वर देव के अनुयायी हो, तो तुम धन्य हो और वह भी धन्य है, जो दुःखी होते हुए भी सद्धर्म में गुणों का धारक है । अतः तुम परिग्रह-भावना को छोड़ कर, साधर्म्य के लिये वात्सल्य भरे कार्य के द्वारा अपने धन को सफल करो । अर्थात् धन्य व्यक्ति की धन्यता को टिकाने के लिये, जो हेय वस्तु छूट कर या खर्च होकर कुछ फलप्रद नहीं होने वाली है,

1947年10月1日 (星期日) 第1000号

### 本報社址

(上海南京路)

(電話二二二)

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

本報社址：上海南京路，電話二二二。

१०११ अथवा १०१२ वृ. निश्चित रूप से गिने।  
निश्चित रूप से गिने, मन्त्रों को गिने। १२२१  
मन्त्रों को गिने (यदि वे निश्चित रूप से गिने  
करने के लिए) प्रतीति का गिना को गिना ही गिना करना  
नामों और गिना नाम से गिना को गिना का गिना करना  
नामों को।

पण्योपाय साक्षात्, जा डिर्ग करेज तं ।  
कवयस्यार्थं शया धीरो, सरीरणा-विभेद्यम् । १३०  
शयन मन्त्र (शयन मन्त्र) पञ्चीश श्वासोच्छ्वास से लगा  
कर, जहाँ तक श्वास रह गके यहाँ तक देह और आत्मा की  
भिन्नता का अनुभव कराने वाला कायोत्सर्ग सदा करे।

णमोषकारेण लोमस्स-सुतेण वा जह्वकम् ।  
काउस्सगं तिगच्छं वा, वणस्सघिड्ढमं करे । १३१  
धैर्यवान् नमस्कारमंत्र अथवा 'लोगस्स' सूत्र के माध्यम  
से यथाक्रम कर्मरूपी घाव चिकित्सा के समान कायोत्सर्ग करे।

टिप्पण- १ श्वासोच्छ्वास की गिनती के दो माध्यम हैं-नमोषकार  
मंत्र और २ घटुविशतिस्तत्र सूत्र । नमोषकारमंत्र का एक-एक पद प्रत्येक  
श्वास पर गिनने पर पांच श्वासोच्छ्वास होते हैं और लोगस्स सूत्र की  
प्रत्येक गायत्री के प्रत्येक चरण प्रत्येक श्वास पर गिनने पर 'चंदेमु जिम्मत्त-  
परा' तक पञ्चीश श्वासोच्छ्वास होते हैं ।

२ मन्त्रार्थ अर्थात् २५ या ५० या १०० या ५०० या १०००  
श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करना । जहाँ तक श्वासोच्छ्वास की नियत  
गिनती नहीं हो वहाँ तक पाठ की पुनः-पुनः आवृत्ति करते रहना चाहिये ।



४ नाशिका-द्वार पर दृष्टि-नाक के त्रिों से प्रयोग-प्राप्त करता है। अतः नहीं निरीक्षण करना। प्रयोग न करना, न यज्ञाना पर महज भाव से मनने केना और उनके बाहर आते-जाते समय पत्रों का मानसिक चिन्तन करते जाना।

५ अप्रमत्तता—इस प्रकार की प्रकिया से निवा जाने की सम्मानना रहती है। अतः सांगम्यन रहना। यदि शीर्षे संद न कर के, नाशिका के अप्रमाण पर या किसी पुद्गत पर उन्हें स्थिर किया जाय तो अप्रमत्तता अच्छी रह सकती है।

### एकादश बोल

(श्रुत-स्मृति)

(अनुष्टुप्)

जिणिद-बुत्तं गण-णाह-दिन्नं,

सुयं हि धम्मस्स पगासगं च ।

उत्पायगं बुद्धिकरं हिअस्स,

अहिज्झए जाव सरीर-भेए ॥१३४॥

जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे गये, गणधरों के द्वारा दिये गये, धर्म के स्वरूप को स्पष्ट रूप से प्रकट करने वाले, हित के उत्पन्न करने वाले और वृद्धि करने वाले श्रुत का देह के छूटने तक अध्ययन करे। अर्थात् सूत्र को कण्ठस्थ करना चाहिये।

पयास-थंभो भव-सायरे जं,

जस्सि पउत्ता तहिया हि भावा ।

णिहंभिउं अत्त-विहाव-चक्कं,

सुयं पढे तं थिर-माणसेणं ।१३५।

... की ... ..  
... ..  
... ..  
... ..

संस्कृत-शिक्षण

संस्कृत-शिक्षण

संस्कृत-शिक्षण

संस्कृत-शिक्षण

... ..  
... ..  
... ..  
... ..

संस्कृत-शिक्षण

संस्कृत-शिक्षण

संस्कृत-शिक्षण

... ..  
... ..  
... ..  
... ..

... ..  
... ..  
... ..  
... ..



२ पुनःपुनः-संज्ञा का समाधान करना, ३ परिश्रम-शून्य की प्राप्ति करना ४ अनुप्रेक्षा-धर्म का चिन्ता करना और ५ गर्भकला । उर्गुण-धर्म में परिश्रम-तापसाधन का निरोध है ।

अल्पं सुत्तरसं नित्तिज्जा, हिअमंमि पुणो पुणो ।

जेणं न कम्म मंडीओ, भित्तिज्जा गल्लु अप्पणो ॥

सूत्र के अर्थ का हृदय में बार-बार चिन्तन करें । जिसमें अपनी कर्म-प्रवृत्तियाँ गिद जायें ।

टिप्पण—इस भाषा में स्वाध्याय के चौथे भेद अनुप्रेक्षा करने का कह कर, उसका फल बताया गया है । अनुप्रेक्षा से कर्म-निर्जरा अधिक होती है ।

पवयणस्स मायाए णाणं करे खु एत्तिमं ।

अणाणुपुच्चि-णोक्कारं, गुणे चाट्ठत्तरं सयं । १३९।

अष्ट प्रवचनमाता (पाँच समिति-तीन गुप्ति) का ज्ञान जघन्य ज्ञान है । कम से कम इतना ज्ञान अवश्य करे । (यदि नित्य प्रति या कभी स्वाध्याय नहीं हो सके तो) अनानुपूर्वी से नमोक्कार मंत्र या एक सौ आठ बार नमोक्कार मंत्र अवश्य गिनें ।

(फाद्य)

आवस्सएणं णिय-धम्म-कज्जं,

पच्चीस-वोलेण य धम्म-तत्तं ।

वीरत्थुईए खल्लु देव-तत्तं,

णमिप्पवज्जाइ म्मुणेज्ज मग्गं ॥ १४० ॥

‘आवश्यक सूत्र’ से अपने धर्मकर्तव्यों को, पच्चीस बोल



वाससए नरमग्नि, कर्मं गवेदु जितियं ।

ननुत्तार-सहियान, गवेदु जितियं गलु ॥१४४॥

जीव नरक में पीड़ा भोग कर मी चर्च में जितने कर्म का क्षय करता है, मनुष्य उतने कर्मों को 'ननुत्तारसहिय' प्रत्याख्यान से क्षय कर देता है। अर्थात् जागी जानवन से स्वेच्छा से अल्प पुण्यार्थ कर के, ननुत्तार-मे कर्मों का नाश कर सकता है।

त्रयोदश बोल

(दिवस चरिम-प्रत्याख्यान)

(काव्य)

सूरत्य-कालाउ मुहुत्त-पुव्वे,

आहार-चार्यं तु करेसु भव्व ।

ण रत्ति भुत्ती किर सावगस्स,

कयावि जुत्ता बहु-दोसवंती ॥१४५॥

हे भव्य ! सूर्यास्त से एक मुहूर्त के पहले से आहार क त्याग करो। रात्रि-भोजन बहुत दोषों से भरा है। इसलिये श्रावक को रात्रि-भोजन कभी नहीं करना चाहिये।

(भार्या)

दिवसंतिमे मुहुत्ते, जं आहारस्स वज्जणं तं तु ।

दिवस-चरिमं जिणेहि, पच्चवखाणं हि पण्णत्तं ॥१४६॥

दिवस के अन्तिम मुहूर्त में जो आहार का त्याग किया जाता है, उसे जिनेश्वर देव ने 'दिवसचरिम' नाम का प्रत्याख्यान कहा है।



है। और (दूध, पानी, मूत्रवाग के सिवाय गा माने नी मिठाई, दूध आदि के सिवाय रात्रि-भोजन के त्याग आदि) भी कई भेद प्रचलित हैं। श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करता है।

**रत्ति-भोषण-चाएण, सुट्ठु होइ वहुं फलं ।**

**अणाघासेण मासंमि, पवलोववासयं फलं ॥१५०॥**

रात्रिभोजन का त्याग करने से बहुत श्रेष्ठ फल मिलता है। विना किसी श्रम के सहज में ही एक महिने में एक पद के उपवास का फल प्राप्त होता है।

टिप्पण—रात्रि-भोजन से आध्यात्मिक हानि तो है ही। परन्तु शारीरिक दृष्टि से भी हानि होती है।

**चतुर्वंश बोल**

(आवश्यक)

**आवस्सएसु कालो उ, जस्स वि जो हु तम्मि य ।**

**भत्तिजुत्तो करेज्जा तं, सहरिसो सुसावगो ।१५१।**

उत्तम श्रद्धालु श्रावक आवश्यकक्रियाओं में, जिस भी क्रिया का जो काल हो, उस काल में उस क्रिया को हर्ष और भक्ति से भरपूर होकर करता है।

टिप्पण—आवश्यक क्रियाएँ छह हैं—१ सामायिक २ चतुर्विंशतिस्तय, ३ वंदना, ४ प्रतिक्रमण ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान। इनमें से दूसरे, तीसरे, और पाँचवें आवश्यक का विधान तीसरे, चौथे और वंशवें बोल में हो चुका है और छठे आवश्यक का १२ वें १३ वें और १५ वें बोल में कुछ विधान है। शेष दो आवश्यक सामायिक और प्रतिक्रमण का इस बोल में विधान किया गया है।



जो त के निम्न) निष्कलित भोग या विषय है ।

### प्रतिक्रमण

नासमं जं पमायस्त, मोक्ष-मगस्त सारयं ।

करजिज्जं दुसंजाए, आवस्तयं चउत्तयं ॥१५५॥

जो प्रमाय को नाष्ट करने वाला है और जो मोक्षमार्ग को निष्कलित श्रेष्ठ या निज बनाने वाला है, वह चौथा प्रतिक्रमण प्राप्त काल और शायं काल दोनों मन्थ्याओं में करना चाहिये ।

(काव्य)

गुणाण रुचं सरिऊण जीयो,

आलोयणं जोगगईइ किच्चा ।

जा वदकया वारइ तं गुणंमि,

दोसं कयं तं अफलं सरित्ता ॥१५६॥

जीव गुणों के स्वरूप का स्मरण करके, अपनी मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया की गति का निरीक्षण करता है । वह गुणों से दूर जाने रूप जो योग की वक्रता है, या गुणों में जो दोष लगाया है, 'वे निष्कल हो'—उन्हें इस रूप में स्मरण करके, योगवक्रता को गुणों में मोड़ देता है (यह प्रतिक्रमण है) ।

(अनुष्टुप्)

पुणोऽकरणवित्तीए, धरणं तु दढं मणे ।

तं पडिक्कमणं होइ, साहणाए विसोहणं ॥१५७॥





(अपने कर्मों की निष्कलता की भावना से) कर्मों के विर  
(अतिचार) नष्ट हो जाते हैं और कर्मों की शक्ति होती है।

पंचदश बोल

(दीक्षा हेतु नियम)

दीक्षा प्रयोगशाला है

(काव्य)

दिवला ह्य अज्ज्ञत्त-पयोग-शाला,

जाए गृणी साह्य-अप्पमत्तो ।

जीवस्स देहस्स य जो सिलेसो,

अच्चंतियं भंजइ तं सुही सो ॥१६॥

दीक्षा अर्थात् साधुत्व को ग्रहण करना—अध  
प्रयोगशाला है। जिसमें मूलोत्तर गुण को धारण क  
प्रमाद से रहित सावधान वह साधक सुखानुभव क  
जो जीव और देह का एकत्व रूप अनादिकालीन च  
बंधन चल रहा है, उसे आत्यन्तिक रूप से = सदा  
तोड़ता है, वह उस श्लेष को तोड़ कर शाश्वत् सुख  
करता है।

लक्ष्य-हेतु त्याग की प्रतिज्ञा

कया अहं संजम-जोगयं तं,

सुद्धं गहिस्सामि सिवो भविस्सं ।

ण जाव दिक्खं लहिहामि ताव,

जं किंचि वत्थुं हि



## पसत्थी

(प्रसारतो)

सासणे पहुवीरसस, धम्मदासो मुणीसरो ।

आयरिओ सिसोमंतो, होंसु धम्म-धुरंधरो ॥१६६॥

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर प्रभु के शासन में मुनियों में प्रधान श्री धर्मदासजी महाराज हो गये हैं। वे ज्ञानादि रत्नत्रयरूप लक्ष्मी से सम्पन्न आचार्य-प्रवर थे। और वे धर्म की धुरा को धारण करने वाले थे।

तस्सीस-हरिदाससस, अण्णये वि मुणीवरा ।

तवस्सी पड्डिया केइ, वत्तारा मुणि-पुंगवा ॥१६७॥

उनके कई विशिष्ट शिष्यों में एक श्री हरिदासजी नाम के मुनि भी थे। उनकी शिष्य-परम्परा में भी श्रेष्ठ मुनिराज हुए हैं। मुनियों में प्रधान कई तपस्वी थे, कई विद्वान थे और कई उत्तम वक्ता मुनिराज थे।

तेसि पुज्जवरो सेट्ठो, गंदलाल-महामुणी ।

चाई लज्जू गिरावेवखो, परीसह-चमू-जई ॥१६८॥

उनमें एक पूज्यवर श्री नन्दलालजी महाराज थे। वे श्रेष्ठ व्रती और महामुनि थे। उनकी त्यागवृत्ति महान् थी। वे संयमी के योग्य विशिष्ट लज्जा के स्वामी थे। उन्हें संसार से यश-कीर्ति आदि किसी की इच्छा नहीं थी—वे परम निरीह थे और इस निरीह भाव से उन्होंने परीपह रूपी सेना को जीत लिया था।



जीव के लिये) निश्चय ही मोक्ष-मार्ग विनाम है।

### प्रतिक्रमण

नासगं जं पमायस्त, मोक्ष-मगस्त सारयं ।

करणिज्जं दुसंज्ञाए, आवस्तयं चउत्थयं । १५५।

जो प्रमाद को नष्ट करने वाला है और जो मोक्षमार्ग को निष्कण्टक श्रेष्ठ या सिद्ध बनाने वाला है, वह चौथा प्रतिक्रमण प्रातःकाल और सायंकाल दोनों गन्ध्याओं में करना चाहिये।

(काव्य)

गुणाण रुवं सरिऊण जीवो,

आलोयणं जोगगईइ किच्चा ।

जा वक्कया वारइ तं गुणंमि,

दोसं कयं तं अफलं सरित्ता ॥ १५६ ॥

जीव गुणों के स्वरूप का स्मरण करके, अपनी मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया की गति का निरीक्षण करता है। वह गुणों से दूर जाने रूप जो योग की वक्रता है, या गुणों में जो दोष लगाया है, 'वे निष्फल हो'—उन्हें इस रूप में स्मरण करके, योगवक्रता को गुणों में मोड़ देता है (यह प्रतिक्रमण है)।

(अनुष्टुप्)

पुणोऽकरणचित्तीए, धरणं तु दढं मणे ।

तं पडिक्कमणं होइ, साहणाए विसोहणं । १५७।

पुनः दोष नहीं करने की वृत्ति से साधना की विशोधि को

यस्य मे सुखं मयि मे पश्यतां ममता-यही समुद्र प्रविष्टमयम द्वी ।

तांसां वनद-संसाय, तामश्चिप्रममणं करे ।

गह्वीय-निघमोयं न, किञ्चिच्च द्रवणं मयि ।१५८।

व्यभिचयं [तार्यं ही किञ्चिच्च के विन्दे] ; योऽयं वनदोऽयं को सुखीय विभयो मे को सुख ही वीरे मया ही द्रवणं व्यभिचयम क्ते ।

[तार्यं]

भाष्यमय्याय विभिन म, प्रीतितायां मुमुक्षियया समन ।

व्यभिचयतायै वीरिण्य वि, पश्चिप्रममण-ऊपरहीकरवयं । १५९ ।

व्यभिचयतायै वीरिण्य वि, पश्चिप्रममण-ऊपरहीकरवयं । १५९ ।

व्यभिचयतायै वीरिण्य वि, पश्चिप्रममण-ऊपरहीकरवयं । १५९ ।

[तार्यं]

व्यभिचयतायै वीरिण्य वि, पश्चिप्रममण-ऊपरहीकरवयं । १५९ ।

(अपने सुकृतों की निष्कलना की भावना में) कर्मों के छिद्र  
(अस्तिचार) बंद हो जाते हैं और जर्मों की शक्ति होती है।

पंचदश बोल

(दीक्षा हेतु निगम)

दीक्षा प्रयोगशाला है

(काव्य)

दिवला हु अज्जत्त-पयोग-साला,

जाए गुणी साहग-अप्पमत्तो ।

जीवस्स देहस्स य जो सिलेसो,

अच्चंतियं भंजइ तं सुही सो ॥१६२॥

दीक्षा अर्थात् साधुत्व को ग्रहण करना—अध्यात्म की प्रयोगशाला है। जिसमें मूलोत्तर गुण को धारण करने वाला प्रमाद से रहित सावधान वह साधक मुखानुभव करता हुआ, जो जीव और देह का एकत्व रूप अनादिकालीन वज्रलेप का बंधन चल रहा है, उसे आत्यन्तिक रूप से = सदा के लिये तोड़ता है, वह उस श्लेष को तोड़ कर शाश्वत् सुख को प्राप्त करता है।

लक्ष्य-हेतु त्याग की प्रतिज्ञा

कया अहं संजम-जोगयं तं,

सुद्धं गहिस्सामि सिवो भविस्सं ।

ण जाव दिवलं लहिहामि ताव,

जं किच्चि वत्तं वि न्णमि भन्ते ! ॥१६३॥

...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...

शुद्धता

शुद्धता का अर्थ है, ...

शुद्धता का अर्थ है, ...

...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...

शुद्धता का अर्थ है

शुद्धता का अर्थ है, ...

शुद्धता का अर्थ है, ...

...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...  
 ...के लिये ही ...



## पसत्थी

(प्रशस्ती)

सासणे पहुवीरस्स, धम्मदासो मुणीसरो ।

आयरिओ सिरीमंतो, होंसु धम्म-धुरंधरो ॥१६६॥

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर प्रभु के शासन में मुनियों में प्रधान श्री धर्मदासजी महाराज हो गये हैं । वे ज्ञानादि रत्नत्रयरूप लक्ष्मी से सम्पन्न आचार्य-प्रवर थे । और वे धर्म की धुरा को धारण करने वाले थे ।

तस्सीस-हरिदासस्स, अण्णये वि मुणीवरा ।

तवस्सी पड्डिया केइ, वत्तारा मुणि-पुंगवा ॥१६७॥

उनके कई विशिष्ट शिष्यों में एक श्री हरिदासजी नाम के मुनि भी थे । उनकी शिष्य-परम्परा में भी श्रेष्ठ मुनिराज हुए हैं । मुनियों में प्रधान कई तपस्वी थे, कई विद्वान थे और कई उत्तम वक्ता मुनिराज थे ।

तेसि पुज्जवरो सेट्ठो, णंदलाल-महामुणी ।

चाई लज्जू णिरावेवखो, परीसह-चमू-जई ॥१६८॥

उनमें एक पूज्यवर श्री नन्दलालजी महाराज थे । वे श्रेष्ठ व्रती और महामुनि थे । उनकी त्यागवृत्ति महान् थी । वे संयमी के योग्य विशिष्ट लज्जा के स्वामी थे । उन्हें संसार से यश-कीर्ति आदि किसी की इच्छा नहीं थी—वे परम निरीह थे और इस निरीह भाव से उन्होंने परीपह रूपी सेना को जीत लिया था ।

संस्कृतभाषायां, प्रथमोऽंशे च सुविधौ ।

सर्वं लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे सुधी ॥१३३॥

एतत्पुस्तकं लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे लिख्यमानं च  
सर्वं लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे लिख्यमानं च । एतत्पुस्तकं  
लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे लिख्यमानं च । एतत्पुस्तकं  
लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे लिख्यमानं च । एतत्पुस्तकं  
लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे लिख्यमानं च । एतत्पुस्तकं  
लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे लिख्यमानं च ।

सुधी लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे सुधी ।

सुधी लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे सुधी ।

सुधी लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे सुधी ।

सुधी लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे सुधी ।

सुधी लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे सुधी ।

सुधी लिख्यमानं, प्रथमोऽंशे सुधी ।







